वर्ष 39 ▪ अंक 5-6
जुलाई–अगस्त ▪ 2022 (संयुक्तांक) मूल्य ₹ 60

वर्तमान साहित्य

साहित्य, कला और सोच की पत्रिका

गीतांजलि श्री पर विशेष

संस्थापक संपादक : विभूति नारायण राय
सलाहकार संपादक : भारत भारद्वाज

☐ वर्ष 39 ☐अंक 5-6 ☐ जुलाई-अगस्त 2022 (संयुक्तांक)
RNI पंजीकरण संख्या 40342/ 83 UPHIN12563

संपादकीय कार्यालय
राजीव निकेतन 16/57 डी-10, कादीपुर, शिवपुर, वाराणसी (उ.प्र.)
पिन-221003
मो. 9005484595, 9531834834
9415893480

ई-मेल : vartmansahitya2021@gmail.com
वेबसाइट : vartmansahitya.org

डिजिटल प्रभार : सत्या एस. दूबे

प्रसार व्यवस्थापक : अभिषेक ओझा

रेखांकन : स्वाति कुमारी, जूही शुक्ला
आवरण : राज भगत

सहयोग राशि : एक प्रति मूल्य 60/- ☐ वार्षिक 700/-
☐ संस्थाओं व लाइब्रेरियों के लिए वार्षिक : 1200/-
☐ विदेशों में वार्षिक : 100 डॉलर।
☐ **रजिस्टर्ड डाक से 1 प्रति 20/-, वार्षिक 240/- अतिरिक्त**
बैंक के माध्यम से सदस्यता शुल्क भेजने के लिए
संजय कुमार श्रीवास्तव
खाता सं. : 28660100008342
IFSC : BARB0SHIVBS
बैक ऑफ बड़ौदा, शाखा-शिवपुर, जिला-वाराणसी (उ. प्र.), 221003
Google Pay **9005484595**
कृपया राशि भेजने की सूचना तत्काल ईमेल, व्हाट्सएप अथवा पत्र द्वारा अपने पते सहित भेजें।

वितरक : रुद्रादित्य प्रकाशन समूह
इलाहाबाद-211015
फोन नं. 0532-2972226, 8175030339

पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं की रीति-नीति या विचारों से **वर्तमान साहित्य,** संपादक मंडल या संपादक की सहमति अनिवार्य नहीं है। संपादन एवं संचालन पूर्णतया अवैतनिक और अव्यावसायिक है। सभी विवादों का निपटारा इलाहाबाद न्यायालय में होगा।

वर्तमान साहित्य

साहित्य, कला और सोच की पत्रिका

संपादक
संजय श्रीवास्तव

उपसंपादक
शशि कुमार सिंह

सह संपादक
सुजीत कुमार सिंह ♦ अलका प्रकाश

सहायक संपादक
कमता प्रसाद

अनुक्रम

संपादकीय

हम देखेंगे.... 5
संजय श्रीवास्तव

सम्मति

लेख

रेत समाधि : सीमांतों से आगे 7
रघुवंश मणि

विडंबनात्मकता के स्थान पर आन्दोलनात्मकता 10
(गीतांजलि श्री की कहानियाँ)
शम्भु गुप्त

रेत समाधि : नमी, ओस और भाप... 24
विवेक मिश्र

रेत समाधि : एब्सर्ड भी इतना एब्सर्ड नहीं होता! 27
सुधांशु गुप्त

एक लेखक की साहित्य समाधि 30
साधना अग्रवाल

समाधि मन है, जहाँ इल्हाम उग आते हैं 33
अलका प्रकाश

साक्षात्कार-एक

'रेत समाधि' कोई फार्मूला लेखन नहीं है और न ही कोई मुहिम है- गीतांजलि श्री 38
(गीतांजलि श्री से उषा राय की आत्मीय मुलाकात)

उपन्यास अंश

रेत समाधि 40
गीतांजलि श्री

कविताएँ

यश मालवीय 45
रोहित ठाकुर 47
ज्योति रीता 48
दिव्या श्री 50

स्मृति कथा

फिर आज खेल रहा हूँ पुरानी यादों से 53
भगवानदास मोरवाल

साक्षात्कार-दो

पुस्तकों में वर्णित यथार्थ से ज़्यादा भयावह है दलित और श्रमशील समाज की विषमता 58
कथाकार रणेंद्र से सावित्री बड़ाइक व जनार्दन की बातचीत

कहानी

राहत : हरियश राय 68
जिंदगी के बाद की जिंदगी : गोविंद उपाध्याय 73
देवता जा चुके हैं : प्रज्ञा 79
पत्तल : प्रताप गोपेन्द्र 87
आक्रोश (पंजाबी कहानी) : कुलबीर बड़ेसरों 92
हिन्दी अनुवाद : सुभाष नीरव

विरासत : भारत भारद्वाज
हिंदी साहित्य का इतिहास
शिवपूजन सहाय की समीक्षा 98

उपन्यास अंश-दो

कोरोना-क़िस्सा क़ैदे हयात (तीन) 100
प्रियदर्शन मालवीय

दस्तावेज़ : योरप यात्रा में छः मास (1932) 105
बनारस से योरप : सुजीत कुमार सिंह

पुस्तक समीक्षा

समकालीन रचनाशीलता की वैचारिकी की अनिवार्य पुस्तक 108
मुकुल अमलास 111

वैविध्य और नवाचार की ताजा बयार : 'तलछट की बेटियाँ'
राकेश कुमार सिंह

कविता की नई धरती: 'जीवन जिस धरती का' 114
ज्वाला सांध्यपुष्प

शोषण की अन्तहीन दास्तान- ताजमहल के आंसू 117
अलका प्रकाश

गतिविधियाँ 119

हम देखेंगे....

यह वक़्त वक़्त नहीं, एक मुकदमा है

साधो !

स्वाधीनता प्राप्ति के कुछ पूर्व से ही राष्ट्र हमारी चिंता का विषय बना हुआ है। लेकिन बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से ये चिंता घनीभूत हो उठी। नये सिरे से राष्ट्रवाद, राष्ट्रीयता और राष्ट्रीय संस्कृति हमारी चिंता के केंद्र में है। इसकी नयी परिभाषाएँ सामने आयीं। ये परिभाषा वे गढ़ रहे थे जिनका राष्ट्र के निर्माण में कोई योगदान ही नहीं था। इन्होंने कभी स्वाधीनता संग्राम को स्वीकार नहीं किया। भारत की धर्मनिरपेक्ष संस्कृति और लोकतंत्र को इन्होंने कभी तरजीह ही नहीं दिया। भारतीय समाज में व्याप्त समुच्चयवादी धारणा और बहुलतावादी संस्कृति का इनके लिए कोई मूल्य ही नहीं था। इनकी सोच में संस्कृति का सम्बंध धर्म से है। इनके लिए प्रकृति, जलवायु, परिवेश और परंपरा की भिन्नता का कोई मतलब ही नहीं। जातीय संस्कृति के निहितार्थ इन्होंने गढ़ने शुरू किए। आर्य, द्रविड़, आदिवासी होने भर से बात नहीं बनी तो स्वधर्मी और विधर्मी की विभाजक रेखा से इनको सबसे ज्यादा सहूलियत मिली। इससे राष्ट्रवाद का एक खाका खींचना इनके लिए आसान हो गया। इसी के आधार पर लोकतंत्र की कसौटी तय होने लगी। फिर नागरिकता एक बड़ा मुद्दा बन कर सामने आया कि इसे तो सबसे पहले तय करो। अब नागरिकता तय हो तब आगे राष्ट्रीयता का दरवाजा खुले। यह सब हो जाय तब कहीं लोकतंत्र और अस्मितावाद की पड़ताल करें। इसी के साथ उन्हें यह भी लगा कि कुछ विजातीय अवधारणाओं के पक्षधर आधुनिकता, प्रगतिशीलता और जनवाद के नाम पर यहाँ मौजूद हैं जिन्हें खारिज़ करने की ज़रूरत है। इसे उन्होंने अंजाम भी दिया। उनका यह काम एक दशक से अपने शवाब पर है।

इसी तरह प्रतिरोध का सवाल बार-बार उठता है। विगत दो-तीन दशक से प्रतिरोध की संस्कृति को एक बड़ी ज़रूरत के तौर पर हम महसूस करते आ रहे हैं। इसके लिए हम मध्यकाल के संतों की बानियों से प्रेरणा ग्रहण करते हैं। इस दौर में ये संत हमारी सबसे बड़ी ज़रूरत हैं। लेकिन इन्हीं संतों में कबीर के बाद रैदास को जनता में सबसे ज्यादा स्पेस मिला। लेकिन उन्हें यह स्पेस हिंदी क्षेत्र में नहीं बल्कि पंजाब में मिला। हाँ, ये फ़र्क ज़रूर है कि पंजाब में रैदास पूजे जाते हैं जबकि हिंदी क्षेत्र में पढ़े जाते हैं। रैदास पाठ्यक्रमों में हैं किंतु यहाँ के पुस्तकालयों में नहीं हैं। बनारस में पूर्वांचल का सबसे बड़ा कालेज है जिसका पुस्तकालय बहुत समृद्ध है लेकिन वहाँ के कैटलॉग में ही रैदास की किताब नहीं मिली ! बीएचयू में रैदास और संत साहित्य के ख्यातिलब्ध विद्वान हुए हैं। प्रो.शुकदेव सिंह ने अकेले रैदास पर बहुत काम किया है। किंतु उनकी पुस्तक भी बनारस में खोजने पर न मिली। कहते हैं कि तुलसी, रैदास और मीरां के बीच सम्पर्क था। वैसे यह जनश्रुति है, पता नहीं इसमें कितनी प्रामाणिकता है। बावजूद इसके तत्कालीन समाज के लिए रूढ़ि और जड़ता के विरुद्ध इतनी बड़ी नसीहत जनश्रुतियों में थी लेकिन ब्राह्मणवाद और सामंतवाद के सामने इस तरह के आदर्श निरर्थक थे। आज भी स्थिति जहाँ की तहाँ है। वही तुलसी आज जिन हिंदुत्ववादी शक्तियों के लिए बड़ा सहारा हैं, उन्हीं के विचारों का यहाँ कोई मूल्य नहीं ! रैदास, मीरां, तुलसी और रहीम अलग-अलग समय में रह कर भी साथ-साथ लगते हैं। मग़र रूढ़िवादियों के दिमाग से कचरा निकलने वाला नहीं, उनकी तो अपनी शर्तें हैं। तुलसी बाबा उनके काम के हैं, बाकियों से क्या लेना-देना ? सदियों से हमारे देश का यही हाल है। जड़ता ने इस देश का साथ नहीं छोड़ा। इतिहास में कुछ ही समय है जब सब ठीक-ठाक लगा। वरना सामाजिक वैमनस्यता ने हमेशा यहाँ विभाजक रेखा ही खींची है। टुकड़े-टुकड़े में बँटा यह अंधविश्वासियों और अंधभक्तों का समाज है। वैज्ञानिक चेतना के साथ आधुनिक समय जब आता है, तब भी इस देश की हालत जस की तस रहती है। इसमें सुधारवादियों की बड़ी भूमिका रही जिससे कुछ हद तक बदलाव हमारे समाज में दिखा। इसे प्रबोधनकाल अगर हम कहते हैं तो उसका इलाका हिंदी क्षेत्र नहीं है। शायद यही कारण है कि जहाँ बंगाल और महाराष्ट्र में नवजागरण हुआ, वहाँ हिंदी क्षेत्र में कभी संभव ही न हुआ जबकि भक्ति आंदोलन का सबसे बड़ा क्षेत्र उत्तर प्रदेश है। प्रतिरोध का साहित्य यहाँ संतो, सूफियों और भक्त कवियों की रचनाओं में दर्ज़ पड़ा है। लेकिन हिंदी क्षेत्र की जड़ता पर इसका कितना प्रभाव पड़ा, यह समझने में किसी को कठिनाई नहीं होगी।

यह भी ध्यान से देखने की ज़रूरत है कि जिस महाराष्ट्र में भक्ति आंदोलन गतिशील हुआ, नवजागरण की लहर उठी और दलित अस्मिता का विकास हुआ, वहीं के नागपुर को प्रतिक्रियावादियों ने अपना केंद्र बनाया। फिर इसका भी प्रतिरोध दिखा। इसी नागपुर को दलित अस्मिता ने बौद्ध मतवाद का सहारा ले कर अपना केंद्र बनाया। यहाँ एक परंपरा के समानांतर दूसरी परंपरा ने धम्मदीक्षा का महाकेंद्र बनाया। तो राजनीति और संस्कृति के घात-प्रतिघात में जो कुछ आज से सौ साल पहले हो रहा था, उसी का विकास आज सामने है।

बहरहाल, अस्मितावाद पर बात करते हुए रैदास पर एक बार फिर हमारा ध्यान जा रहा है। उनको मानने वाले सिर्फ दलित समुदाय के लोग ही हैं। उनमें भी अधिकांश ने उनको ईश्वरवादी मानते हुए